डॉ. महेश प्रसाद सिन्हा
प्रधानाचार्य सह ऐसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, सी.एम.जे.कॉलेज दोनवारीहाट खुटौना,मधुबनी– 847227
Email ID: principalcmjcollege@gmail.com Web:www.cmjcollege.com Mob.No 8544513344

हिन्दी प्रतिष्ठा पार्ट–II के छात्रों के लिए कोर्स मैटेरियल (दिनांक–04 मई, 2020)

प्रगतिवाद की वैचारिक पृष्ठभूमि

छायावाद, रहस्यवाद, हालावाद, राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के विवादी स्वरों की झंकार गूंज ही रही थी कि एक और नया वाद चहलकदमी करता हुआ हिन्दी में 'प्रगतिवाद' के नाम से प्रचलित हो गया। इसे दूसरे रूप में भी समझा जा सकता है कि जिस प्रकार हिन्दी में द्विवेदी युगीन इतिवृतात्मकता के प्रतिक्रियास्वरूप छायावाद आया था उसी प्रकार छायावादी सूक्ष्मता और लाक्षणिकता के प्रतिक्रिया को लेकर प्रगतिवाद आया।

ऐतिहासिक दृष्टि से सन् 1935 ई0 के नवम्बर महिने में लंदन में इस प्रगतिवाद का जन्म हुआ। इसके प्रणेता सज्जाद जहीर थे। यह लेखक समूह अपने लेखन से सामाजिक समानता का समर्थन करता था और समाज तथा देष में व्याप्त कुरीतियों, अन्याय, पिछड़ेपन, प्राचीन अंधविष्वासों व धार्मिक सांप्रदायिकता का खुलकर विरोध करता था। 12–14 जनवरी, 1936 को 'हिन्दुस्तान एकेडमी' का वार्षिक अधिवेषन हुआ। इसमें अनेक साहित्यकार एकत्र हुए, जिसमें सच्चिदानन्द सिन्हा, डॉ0 अब्दुल हक, गंगानाथ झा, जोष मलीहाबादी, मुंषी प्रेमचंद, रसीद जहां, अब्दुस्सत्तार सिद्दिकी आदि मौजूद थे। यहीं सज्जाद जहीर ने प्रेमचंद के साथ 'प्रगतिषील संगठन' के घोषणापत्र पर बातचीत कर हस्ताक्षर किये। फरवरी, 1936 ई0 में अलीगढ़ में सज्जाद जहीर के साम्यवादी मित्रों ने मिलकर आनन–फानन में प्रगतिषील लेखकों का एक जलसा किया। हिन्दी में प्रगतिषील लेखक संघ का प्रथम अधिवेषन 9–10 अप्रैल, 1936 को प्रेमचंद की अध्यक्षता तथा सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनंद की उपस्थिति में लखनऊ में हुआ।

प्रगतिवाद मूलतः जीवन को देखने समझने का एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिषील' षब्दों को लेकर व्यख्या की जाने लगी। 'प्रगति' षब्द का अर्थ चलना या आगे बढ़ना है। इससे प्रगतिवाद का अर्थ हुआ जो वाद आगे बढ़ने में विष्वास रखता हो। किन्तु आधुनिक हिन्दी में इसका अर्थ संकुचन हुआ और यह एक विषेष मार्क्सवादी दृष्टि के अनुकूल विचारधारा के लिए रूढ़ हो गया। 'प्रगतिवाद' से मिलता–जुलता षब्द 'प्रगतिषील' भी हिन्दी में प्रचलित हुआ। यह माना जाने लगा कि प्रगतिवाद कार्ल मार्क्स की विचारधाराओं से बँधा हुआ है और प्रगतिषील उनसे सर्वथा स्वतंत्र। वस्तुतः जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्षन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है। लंदन में प्रगतिवाद का जन्म एवं इंग्लैण्ड में मजदूर दल का विजयी होना और कार्ल मार्क्स के साम्यवादी विचारों का पूरी दुनिया में प्रसार हिन्दी में प्रगतिवाद का मूल उत्प्रेरक रहा है। 1936 में छायावादी कवि जयषंकर प्रसाद की मृत्यु एवं महादेवी का दुःखवाद और रहस्यवाद की ओर मुखातिब होने के कारण मुख्य रूप से सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला प्रगतिवाद के प्रवर्तक हुए। प्रगतिवाद के सहयोगी कवियों के रूप में बालकृष्ण षर्मा 'नवीन' और रामधारी सिंह दिनकर का नाम लिया जाता है। प्रगतिवादी कवियों ने मुख्य रूप से अपनी रचनाओं में

यथार्थवाद, साम्यवाद, समाजवाद, वर्गसंघर्ष और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को तरजीह देकर प्रगतिवादी विचारधारा का मार्ग प्रषस्त किया। प्रगतिवाद को समझने के लिए उसके आधारभूत सिद्धांत या उस विचारधारा को जानना अति आवष्यक है, जिसकी बुनियाद पर प्रगतिवाद का विकास और प्रसार हुआ।

आधारभूत सिद्धांत :– प्रगतिवादी साहित्य का मूल आधार कार्ल मार्क्स (1818–83) की विचारधारा है। मार्क्स विष्व के प्रथम ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने समाज में फैले 'कोढ़ पूँजीवाद' के विरुद्ध बुद्धि को अपील करने वाली द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की वैज्ञानिक आवाज उठायी। कार्ल मार्क्स ने अपने वर्गवाद सिद्धांत के तहत 'षोषक' और 'षोषित' को परिभाषित किया और कहा कि षोषक वर्ग गरीब जनसमुदाय को जोंक की तरह चूसता है। खून गायब पर घाव का नामोनिषान नहीं होता। मार्क्स ने पूँजीवाद के इसी वीभत्स की ओर जनसाधारण का ध्यान आकृष्ट किया।

दार्शनिक सिद्धांत :– कहते हैं कि जिस साहित्य का दार्षनिक आधार जितना उर्जावान होता है, उसका भाव उतना ही स्थायी और टिकाऊ होता है। मार्क्सवाद प्रगतिवाद का प्राणदायक तत्व है। मार्क्स का दार्षनिक सिद्धांत 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' के नाम से जाना जाता है। मार्क्स के इस दर्षन का आधार हीगेल के ''द्वन्द्वात्मक'' और फायरबाख के ''भौतिकवाद'' का दार्षनिक सिद्धांत है। हीगेल ने सृष्टि के मूल में तीन अवस्थाओं को माना–

1. वाद (Thesis)
2. प्रतिवाद (Antithesis) और
3. युक्तवाद (Synthesis)

भारतीय दर्षन के अनुसार 'ब्रह्म' यदि वाद है तो 'माया' प्रतिवाद और ब्रह्म तथा माया के मिलन से जगत की उत्पत्ति 'युक्तवाद'। हीगेल के अनुसार सृष्टि के मूल में 'सत्' और 'चित्त' दोनों की सत्ता है। दोनों का आधार 'आइडिया' है। मार्क्स ने 'आइडिया' की जगह 'मैटर' को प्रमुखता दी। मार्क्स ने चेतना को हटाकर 'सत्' अर्थात जड़ जगत या मूल प्रकृति को मूल तत्व माना। मार्क्स के अनुसार यह मूल प्रकृति जब साम्यावस्था में रहती है तो 'क्षोभ' या द्वन्द्व उत्पन्न होता है और तब इसके रूप में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन के साथ ही उसमें स्वयं चेतना उत्पन्न हो जाती है। परिवर्तन की इस क्रिया को "The changing of quantity into quality." कहते हैं। उनके अनुसार 'प्रत्येक वस्तु में उसके विपरीत विनाषक धर्म होते हैं, जिससे ''द्वन्द्व'' या ''संघर्ष'' पैदा होता है, और यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इसी प्रक्रिया के तहत साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना पर मार्क्स ने बल दिया और विष्व सभ्यता के विकास में इसकी स्थापना के लिए षोषकों के विरुद्ध दुनिया के मजदूरों को एक होने का संदेष दिया। मार्क्स के सामने दुनिया को जानने से अधिक दुनिया को बदलने की समस्या थी। इसी से मार्क्स दर्षन दुनिया का पुनर्निर्माण चाहता है। ईष्वर और धर्म की अवमानना और संसार से सर्वहारा वर्ग के षोषण का अंत कर वर्गहीन समाज की स्थापना मार्क्सवाद का चरम उद्देष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वह 'हिंसात्मक क्रांति' का भी समर्थन करता है। किन्तु 1992 ई0 में सोवियत संघ के विखंडन के साथ ही मार्क्स के सिद्धांतों का भी पतन हो गया।

<u>प्रगतिवाद की मुख्य विशेषताएं</u> :– प्रगतिवादी साहित्य का मूल लक्ष्य मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करना तथा षोषित वर्ग को क्रांति के लिए षोषक वर्ग के विरुद्ध उत्तेजित करना रहा है। हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी चेतना का आरंभ सन्1936 ई0 के आसपास हुआ। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध और आलोचना आदि सभी क्षेत्रों में प्रगतिवादी विचारधारा या प्रवृत्तियों का विकास होने लगा। प्रगतिवाद का संबंध केवल हिन्दी से नहीं बल्कि विष्व साहित्य से है। इसी तरह उसका व्यापक प्रभाव सोच और विचारधारा के धरातल पर पूरी दुनिया पर पड़ा।

प्रगतिवाद की दृष्टि में साहित्य नंदन कानन की वस्तु नहीं और न उर्वषी के तरल नुपूरों की मादक झंकार है। वह तो सामाजिक यथार्थ और सत्य की टकराहट है। समाज के यथार्थ रूपों का उद्घाटन करना प्रगतिवादी साहित्यिकों का कर्तव्य है, न की 'नीरो' की तरह चुपचाप बैठकर बाँसुरी बजाना। इसी आधार पर कल्पना लोक में विचरण करने वाले कवि पंत अचानक धरती पर रचने–बसने वाले जनसाधारण की ओर देखने लगते हैं–

ताक रहे हो गगन
देखो भू को
जीव प्रसू को।

इसी तरह निराला ने 'कुकुरमुत्ता' में युग सत्य का चित्र खींचते हुए श्रमिक वर्ग के प्रतीक 'कुकुरमुत्ता' और पूँजीवाद के प्रतीक 'गुलाब' के बीच के को द्वन्द्व को लिखा –

अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुषबू रंगो आब।

'वह तोड़ती पत्थर' षीर्षक कविता में दलित भावना के साथ पूँजीवाद पर सीधा प्रहार है–
वह तोड़ती पत्थर;/देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर–/वह तोड़ती पत्थड़।/ कोई न छायादार/ पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;/ष्याम तन भर बंधा यौवन,/गुरु हथौड़ा हाथ,/ करती बार–बार प्रहारः–/समने तरू–मालिका अट्टालिका, प्राकार।
रामधारी सिंह दिनकर ने खुलकर लिखा–

ष्वानों को मिलता दूध–भात
भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर
जाड़े की रात बिताते हैं।

बालकृष्ण षर्मा नवीन ने तो यहां तक कह डाला कि –

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल–पुथल हो जाये।

इस प्रकार प्रगतिवादी कवियों ने गांधीवाद, रहस्यवाद, कल्पनाषीलता और प्राकृतिक उपादानों से हटकर यथार्थवाद की भाव–भूमि पर जनसाधारण के हितों से जुड़कर अपनी रचनाएं प्रस्तुत कीं। किन्तु पार्टीबद्ध लेखन तथा षुद्ध नारेबाजी के चलते इनका षीघ्र पतन हो गया। बावजूद इसके प्रगतिवाद ने बर्नाड षॉ की उक्ति की वैचारिकता को चरितार्थ किया– ''The man who writes about himself and his own time is the only man who writes about all people and about all time.''

दिनांक : 04/05/2020 **– डॉ. महेश प्रसाद सिन्हा**